छायावाद

नामवर सिंह

राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली इलाहाबाद पटना

करके आलोचकों को पहले से ही छायावाद के विषय में सामान्य-आरोप करते समय आगाह कर दिया है। 'सरोज-स्मृति' में प्रेम के जिस वत्सल भाव की अभिव्यंजना हुई है, वह छायावाद में ही नहीं, बल्कि संपूर्ण काव्य के इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान का अधिकारी है।

यदि इस अपवाद को अपवाद ही मान लें तो भी छायावादी कविता में नारी को जो महत्त्व प्राप्त है, वह पहले की अपेक्षा कहीं अधिक गौरवशाली है। नारी के सभी सामाजिक रूपों को न अपनाते हुए भी छायावादी कवि ने एक ही क्षेत्र में नारी को जो महिमा प्रदान की, वह स्तुत्य है। श्रद्धामयी, करुणामयी, कल्याणी, कलामयी तथा प्रममयी जीवन-सहचरी नारी का चित्रण करके छायावादी कवियों ने समाज और साहित्य को अभिनव जीवन-रस से सींच दिया। कवि के शब्दों में :

अकेली सुंदरता कल्याणि
सकल ऐश्वर्यों की सन्धान।
देवि! माँ! सहचरि! प्राण!

6

जागो फिर एक बार

व्यक्तित्व की स्वाधीनता, प्रकृति का साहचर्य और स्वतंत्र नारी की शक्ति का सहयोग पाकर आधुनिक पुरुष व्यापक सामाजिक और राजनीतिक जीवन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगा। वह केवल प्रेम और सौंदर्य का ही बंदी नहीं रहा। उसने केवल प्रेम-राज्य में ही रूढ़ियों के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया; बल्कि जीवन के जिस क्षेत्र में उसे विषमता, पराधीनता और अन्याय दिखाई पड़ा, वहीं उसने संघर्ष आरंभ कर दिया। इस व्यापक राष्ट्रीय जागरण का प्रभाव छायावाद की कविता पर भी पड़ा। निःसंदेह यह प्रभाव सब समय अत्यंत स्पष्ट और प्रत्यक्ष नहीं था। और यह छायावाद का कोई अपराध नहीं है। कविता राजनीतिक और सामाजिक घटनाओं का अविकल अनुवाद नहीं है। विविध राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक घटनाएँ मानव- व्यक्ति के मन पर जो सम्मिलित प्रभाव डालती हैं, कविता उसकी भावात्मक प्रतिक्रिया है। काव्य में अभिव्यक्त अनुभूति इतनी संश्लिष्ट होती है कि उसमें से राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सामाजिक आदि तत्त्वों का विश्लेषण सरलता से नहीं किया जा सकता। किसी गीत की व्यथा का मूल स्रोत कौन-सी सामाजिक घटना है, यह उस गीत में उतराती नहीं फिरती जो चट से छानकर हथिया ली जाए। साहित्य अंततः साहित्य ही है—वह परिस्थितियों के सहित अथवा सम्मिलित प्रभाव की अभिव्यंजना है। साहित्य मानव के संपूर्ण व्यक्तित्व की वाणी है; अविभक्त जीवन की इकाई का प्रतिबिंब है। फिर छायावाद तो अपनी छाया के लिए प्रसिद्ध ही है। इसके नाम से ही प्रकट है कि इसमें समकालीन सामाजिक परिस्थितियों की अभिव्यक्ति छाया रूप में हुई है :

वह केवल जीवन के वन में
छाया एक पड़ी।

और जहाँ सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति भाव-सत्ता के जितने ही गहरे स्तर पर होती है, जैसा कि श्रेष्ठ साहित्य में सदैव होता है, आलोचक का कार्य कठिन हो

जाता है। जो आलोचक यह कठिन कार्य करने में अलसाता है अथवा जिसमें विश्लेषण की इतनी क्षमता नहीं होती या जो अपने दृष्टिकोण-विशेष के कारण साहित्य में तात्कालिक घटनाओं का अनुवाद ढूँढ़ता फिरता है, वह छायावाद के बारे में प्रायः शिकायत करता रहता है कि वह समकालीन सत्य से दूर रहा अथवा युगधर्म की उपेक्षा कर गया या वह तत्कालीन राष्ट्रीय आंदोलन से उदासीन रहा।

परंतु हमने देखा है कि छायावाद ने काव्यात्मक ढंग से किस प्रकार नर-नारी दोनों की पुरानी सामाजिक और नैतिक रूढ़ियों से मुक्त होने की कामना को वाणी दी, किस प्रकार उसने जड़ सामूहिकता में बँधे हुए व्यक्ति की वैयक्तिकता के लिए संघर्ष किया और फिर उसके व्यक्तित्व के विकास में सहयोग दिया और किस तरह छायावाद ने मानव-मन में सार्वभौम भावना का बीजारोपण करके उसके मनःक्षितिज का विस्तार किया। इन सभी बातों का संबंध समकालीन सामाजिक जीवन से ही है। इसीलिए कुछ आलोचक कहते हैं कि राजनीतिक ढँग से जो कार्य गाँधीवाद ने किया, साहित्यिक ढँग से वही कार्य छायावाद ने किया। इसी बात को वैज्ञानिक ढंग से कहना चाहें तो कह सकते हैं कि बुद्धिजीवी मध्य-वर्ग के नेतृत्व में भारतीय जनता ने अपनी राजनीतिक और सामाजिक स्वाधीनता के लिए जो संघर्ष किया, उसके कई पहलुओं को छायावाद ने सचाई के साथ प्रतिबिंबित किया और यथाशक्ति उसे आगे बढ़ाने में योग भी दिया।

यह तो हुई छायात्मक अभिव्यक्ति की बात। कभी-कभी छायावाद ने सीधे ढंग से भी राजनीतिक और सामाजिक बातों के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त की। सबसे पहले **राष्ट्रीयता की भावना** को ही लें।

हर पराधीन देश में राष्ट्रीयता की भावना का उदय **पुनरुत्थान-भावना** से होता है। इसकी वजह है। विजेता जाति प्रायः विजित जाति को दबाने के लिए उसमें से सभी प्रकार की शक्तियों का अपहरण करने का प्रयत्न करती है। भारतवर्ष पर अपनी साम्राज्यवादी छाया डालने के बाद अंग्रेजों ने भी यही किया। उन्होंने भारतीयों के आत्म-गौरव को कुचलने के लिए हर तरह की कोशिश की। उनको बर्बर और असभ्य कहा; उनकी सांस्कृतिक परंपरा को तुच्छ ठहराया; उन्हें शुरू से ही हार खानेवाला साबित किया और भारतीयों के मन में यह भाव भरने की कोशिश की कि अपनी भौगोलिक परिस्थितियों के कारण सदा से ही भारतवासी अकर्मण्य, परलोक की चिंता करनेवाले तथा सैनिक भाव से हीन रहे हैं। अंग्रेजों ने हर तरह भारत के इतिहास को विकृत करने की कोशिश की।

निःसंदेह उन्होंने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भारतीय इतिहास की छिपी-दबी अनेक सामग्रियों को खोजकर प्रकाश में रखा। अंग्रेजों में भी सभी एक ही प्रवृत्ति के न थे। उनमें कुछ शुद्ध विद्याव्यसनी भी थे; उनके मन में भारतीय संस्कृति को जानने की सच्ची लगन थी। इन सबके सम्मिलित प्रयत्न से भारतवर्ष

के कोने-कोने में खुदाई हुई। पुरातत्त्व विभाग ने अतीत की बहुत-सी सामग्री खोज निकाली और एक बार प्रकाश में आ जाने पर इन सामग्रियों ने अपना स्वतंत्र अस्तित्व प्राप्त कर लिया। तथ्य तो तथ्य हैं—इनकी व्याख्या करने के लिए सभी लोग स्वतंत्र हैं। यदि इन तथ्यों के आधार पर साम्राज्यवादी अँग्रेज विद्वान भारत की सांस्कृतिक परंपरा को हेय ठहराने की कोशिश कर सकते हैं तो भारतीय विद्वान उसी आधार पर अपनी परंपरा को गौरवशाली भी तो दिखा सकते हैं। एक बार प्रकाश में आकर तथ्य स्वयं प्रकाश में लानेवाले की इच्छा से भी स्वतंत्र हो जाते हैं. और फिर वे सबकी संपत्ति बन जाते हैं। यही हालत भारतीय इतिहास की पुरातात्विक सामग्री की हुई। अंग्रेजों ने इनकी खुदाई चाहे जिस उद्देश्य से की, परंतु इन्होंने भारतीयों में अपनी सांस्कृतिक परंपरा का बोध जगा दिया। भारतवासियों को अपने भूले हुए अतीत का नवीन परिचय प्राप्त हुआ। संपूर्ण जाति में आत्म-गौरव का भाव जाग उठा।

भारतवासियों ने वर्तमान पराधीनता के अपमान को भूलने के लिए अतीत के स्वर्ण-युग का सहारा लिया। वर्तमान की हार का उत्तर उन्होंने अतीत की जीत से दिया। हीनता का भाव दूर हुआ। जो जाति वर्तमान में विभाजित थी, वह अतीत की पृष्ठभूमि पर एक हो उठी। इस तरह अतीत के पुनरुत्थान ने संपूर्ण देश में एक जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना का सूत्रपात किया।

इस पुनरुत्थान-परक जातीय भावना को छायावादी कवियों ने भी प्रतिध्वनित किया। पुनरुत्थान-भावना प्रसाद में सबसे अधिक थी। चंद्रगुप्त, स्कंदगुप्त आदि अनेक ऐतिहासिक नाटकों के द्वारा उन्होंने जातीय जागरण के प्रसार में सहयोग तो दिया ही, इस भावना के उन्होंने कई गीत भी लिखे, जिनमें 'स्कंदगुप्त' का प्रसिद्ध गीत "हिमालय के आँगन में उसे प्रथम किरणों का दे उपहार" मूर्धन्य है। आत्म-गौरव का जैसा ओजस्वी उद्‌बोधन इस गीत में है, वैसा उस युग के शायद ही किसी गीत में मिले। इस गीत में प्रसाद कहते हैं कि संस्कृति का जन्म सबसे पहले भारत में ही हुआ। राम की दक्षिण-विजय, बुद्ध की अहिंसा और अशोक की करुणा संसार को भारत की देन है। संसृति में संस्कृति का प्रसार भारत से ही हुआ है। अनेक जातियों के उत्थान-पतन और आक्रमण के बावजूद भारत अपनी संस्कृति की रक्षा करता हुआ आगे बढ़ता आ रहा है। अंत में वे कहते हैं:

वही है रक्त, वही है देह, वही साहस है, वैसा ज्ञान।
वही है शांति, वही है शक्ति वही हम दिव्य आर्य संतान।
जिएँ तो सदा, उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हर्ष।
निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।

पेशोला की प्रतिध्वनि' और 'शेरसिंह का शस्त्र-समर्पण' ये दो और कविताएँ प्रसाद की ऐसी हैं, जिनमें जातीय पराजय की मार्मिक झाँकी दिखलाते हुए विजय

की आकांक्षा जगाई गई है।

मेवाड़ की पेशोला झील में "निर्धूम भस्म रहित ज्वलन पिंड" का जो 'अरुण करुण बिंब' है, वह वस्तुतः जातीय सूर्य के अस्तमित गौरव का प्रतिबिंब है। पेशोला के किनारे किसी समय अपनी जीवन-संध्या में महाराणा प्रताप ने जो प्रश्न किया था, उसकी प्रतिध्वनि कवि को आज भी पेशोला की लहरों में सुनाई पड़ती है। यह पुकार केवल पेशोला की नहीं, बल्कि संपूर्ण अतीत की है और केवल अतीत की ही नहीं, बल्कि पराधीन वर्तमान की है, क्योंकि उस अतीत की व्यंजना में व्यंग्य तो वर्तमान ही है :

कौन लेगा भार यह ?
कौन विचलेगा नहीं ?
साधना पिशाचों की बिखर चूर चूर होके
धूलि-सी उड़ेगी किस दृप्त फूत्कार से ?

इस कविता में जिस 'पिशाच' की ओर संकेत किया गया है वह कौन है, इसे बतलाने की आवश्यकता नहीं है। जिनमें साहित्य का थोड़ा-सा भी संस्कार है वे जानते हैं कि यह 'पिशाच' अतीत का नहीं, बल्कि वर्तमान का है।

और 'शेरसिंह का समर्पण' तो एकदम आधुनिक घटना है। शेरसिंह को अँग्रेजों के ही सम्मुख शस्त्र समर्पित करना पड़ा था। शेरसिंह के मुख से जैसे सारा भारतवर्ष अंग्रेजों को जवाब दे रहा है :

"आज विजयी हो तुम
और हैं पराजित हम
तुम तो कहोगे, इतिहास भी कहेगा यही,
किंतु यह विजय प्रशंसा भरी मन की—
एक छलना है !"

इस तरह की बातें अंग्रेजी शासन के मध्याह्न में कहने का साहस एक छायावादी कवि ही कर सका।

छायावादी कवियों में प्रसाद के बाद जिनमें अपनी परंपरा के गौरव का बोध सबसे अधिक था, वे हैं निराला। 'छत्रपति शिवाजी का पत्र' (1922) औरंगजेब के समर्थक जयसिंह के लिए नहीं, बल्कि अंग्रेज-बहादुर के समर्थक आधुनिक 'जयसिंहों' के लिए है; जिसमें अंत तक जाते-जाते वे कहते हैं :

एकीभूत शक्तियों से एक हो परिवार
फैले समवेदना
व्यक्ति का खिचाव यदि जातिगत हो जाए,

देखो परिणाम फिर,
स्थिर न रहेंगे पैर,
पस्त हौसला होगा,
ध्वस्त होगा साम्राज्य।
जितने विचार आज
मारते तरंग हैं,
साम्राज्यवादियों की भोगवासनाओं में
हिंदुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से,
दासता के पाश कट जाएँगे।

इस कविता का बाहरी रूप हिंदू-पुनरुत्थान का भले ही हो, परंतु इसमें अंग्रेजी साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोह तथा जातीय एकता का बीज स्पष्ट है। इस कविता तथा ऐसी ही अन्य कविताओं का जो रूप-विन्यास हिंदू-पुनरुत्थान से सीमित हो गया है, उसके मूल कारण भारत के सांस्कृतिक पुनर्जागरण में हैं। साम्राज्यवादियों की भेद-नीति के कारण सांस्कृतिक पुनर्जागरण में भी आरंभ से ही धार्मिक दरार पड़ गई, जिसके प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव से उस युग के बहुत कम विचारक बच सके।

'जागो फिर एक बार' कविता की दूसरी किस्त (1921) में भी निराला ने सांस्कृतिक परंपरा की दुहाई देकर आत्म-गौरव और उद्‌बोधन का भाव जगाया है। अकाली सिक्खों के शौर्य तथा गीता की वाणी को स्मरण कराते हुए निराला कहते हैं :

शेरों की माँद में
आया है आज स्यार
जागो फिर एक बार

और फिर :

मुक्त हो सदा ही तुम
बाधा-विहीन-बंध-छंद ज्यों।
तुम हो महान,
तुम सदा हो महान,
है नश्वर यह दीन भाव।

तुलसीदास (1935) में स्वाधीनता की इस भावना का पूर्ण प्रस्फुटन हुआ है। भारत के सांस्कृतिक सूर्य के अस्त होने पर देश में किस तरह अंधकार छाया हुआ है, इसका मार्मिक चित्रण करते हुए निराला ने दिखलाया है कि किस प्रकार एक कवि

इस अंधकार को दूर करने की चेष्टा करता है। 'तुलसीदास' के रूप में निराला ने आधुनिक कवि के स्वाधीनता-संबंधी भावों के उदय और विकास का चित्रण किया है। छायावादी कवि की तरह निराला के 'तुलसीदास' को भी देश की पराधीनता का बोध प्रकृति की पाठशाला में ही होता है; किंतु छायावादी कवि की तरह वे भी कुछ दिनों के लिए नारी-मोह में पड़कर उस भाव को भूल जाते हैं। अंत में जो ज्ञान प्रकृति की पाठशाला में मिला था, उसका दीक्षांत भाषण उसी नारी के विश्वविद्यालय में सुनने को मिलता है, और भविष्यवाणी होती है कि:

देश-काल के शर से विधकर
यह जागा कवि अशेष छवि धर
इसके स्वर से भारती मुखर होयेंगी।

इस तरह हिंदी जाति के सबसे बड़े जातीय कवि की जीवन-कथा के द्वारा निराला ने अपनी समसामयिक परिस्थितियों में रास्ता निकालने का संकेत दिया है।

इन सभी प्रसंगों और उपाख्यानों से साफ मालूम होता है कि आधुनिक कवि ने अपने युग की समस्याओं को सुलझाने के लिए इतिहास अथवा परंपरा का उपयोग किस प्रकार किया। छायावादी कवियों ने कहीं भी अतीत के स्वर्णयुग में लौटने की चर्चा नहीं की; उन्होंने अतीत को प्रायः प्रेरणा-स्रोत के ही रूप में स्वीकार किया है।

उन्होंने यह भाव तो अवश्य प्रकट किया है कि अतीत युग आज से अधिक सुंदर और सुखद था और कभी-कभी भावावेग में यह भी आकांक्षा प्रकट की है कि किसी प्रकार वह बीता हुआ स्वर्ण-युग लौट आए; परंतु इस सबका अर्थ अतीत का यथावत् पुनरुत्थान नहीं है। प्रसाद की *कामना* नाटिका में आदिम-युग के सरल जीवन का आकर्षण अवश्य दिखाया गया है, पर उसे भी वर्तमान वाणिज्य-व्यवस्था की प्रतिक्रिया ही समझना चाहिए। अतीत के विषय में छायावादी कवियों ने प्रायः यही कहा है कि आह, अब वह स्वर्ण-युग लौट नहीं सकता!

पंत का कहना है:

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन वह सुवर्ण का काल
भतियों का दिगंत छवि-जाल।

देव-सृष्टि के ध्वंस पर प्रसाद के मनु भी रोते हुए कहते हैं कि 'गया, सभी कुछ गया!' परंतु जैसा कि निराला ने लिखा है, प्राचीन परंपरा से आधुनिक कवि का संबंध बहुत कुछ प्रेरणा-मूलक ही था:

कठिन शृंखला बजा-बजा कर
गाता हूँ अतीत के गान
किंतु कभी क्या उस अतीत को

आता है मेरा भी ध्यान?
शिशु पाते हैं माताओं के
वक्षःस्थल पर भूला गान,
माताएँ भी पातीं शिशु के
अधरों पर अपनी मुस्कान।

जातीय अथवा राष्ट्रीय भावना के इतिहास में यदि पुनरुत्थान-भावना प्रथम चरण है, तो देश-प्रेम द्वितीय चरण। अपने गाँव और प्रांत की सीमा से बाहर निकलकर संपूर्ण देश को अपनी जन्मभूमि समझना राष्ट्रीयता का मंगलाचरण है। लेकिन सच्चे देश-प्रेम के लिए आवश्यक है अपने देश के पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, नदी-नाले, पहाड़-झरने, ग्राम-प्रांतर तथा यहाँ के रहनेवाले लोगों से घनिष्ठ परिचय तथा सहज स्नेह। अपने देश की प्राकृतिक सुषमा से जो आदमी प्रभावित न होगा, वह उसकी रक्षा के लिए जान क्या देगा? इसीलिए पुनरुत्थान-भावना के साथ ही हमारे देश में प्राकृतिक देश-प्रेम का भी उदय हुआ है।

कवियों ने भावुकतावश भारतमाता के भव्य रूप की कल्पना की, जिसके सिर पर हिमालय का हिम-किरीट है, चरण-तल में पादार्घ्य लेने के लिए समुद्र खड़ा है; कटि-मेखला की तरह विंध्यमाला है और हृदय के स्नेह-स्रोत की जगह गंगा-जमुना बह रही है। मैथिलीशरण गुप्त की:

नीलांबर परिधान हरित पट पर सुंदर है
चंद्र-सूर्ययुत मुकुट मेखला रत्नाकर है
नदियाँ प्रेम-प्रवाह, फूल तारे मंडन हैं
बंदीजन खग-वृंद, शेष-फन सिंहासन है
करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी उस देश की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही सगुण मूर्ति सर्वेश की।

कविता कुछ-कुछ इसी भावना का प्रतिनिधित्व करती है।

परंतु छायावाद तक आते-आते देश-प्रेम की इस स्थूल मूर्ति-पूजा का और भी विकास हुआ। विश्व-मानवतावाद की विराट भावना ने देश-प्रेम की प्राचीन संकीर्णता को दूर कर उसके क्षितिज का विस्तार किया। स्थूल मूर्ति का स्थान सूक्ष्म भावात्मक संज्ञा ने ले लिया। पहले प्रकृति के नाम पर जहाँ चौहद्दी बयान की जाती थी, वहाँ अब प्रकृति का जीवंत और भव्य चित्रण किया गया। द्विवेदीयुगीन स्थूल और संकीर्ण देश-प्रेम से छायावादी देश-प्रेम कितना भावात्मक और व्यापक था, इसे प्रसाद के *चंद्रगुप्त* नाटक में कॉर्नेलिया के द्वारा गाए हुए इस गीत से अनुभव किया जा सकता है:

अरुण यह मधुमय देश हमारा।
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा।

सरस तामरस-गर्भ-विभा पर, नाच रही तरुशिखा मनोहर।
छिटका जीवन हरियाली पर मंगल-कुंकुम सारा।
लघु सुरधनु से पंख पसारे, शीतल मलय समीर सहारे।
उड़ते खग जिस ओर मुँह किए समझ नीड़ निज प्यारा।
बरसाते आँखों के बादल, बनते जहाँ भरे करुणा-जल।
लहरें टकरातीं अनंत का पाकर जहाँ किनारा।

पुराना कवि अधिक से अधिक भारतमाता को शेष-फन के सिंहासन पर बैठाकर खग-वृंद-जैसे बंदीजनों द्वारा उसकी स्तुति कराना ही बड़ी बात समझता था। लेकिन छायावादी कवि भारतमाता को सामंत युग की राजरानी बनाने में विश्वास नहीं करता था। छायावादी कवि की भारत भूमि ऐसी है जिससे क्षितिज को भी एक सहारा मिलता है और अनंत की लहरों को भी किनारा प्राप्त होता है। इसका आकाश खगों के छोटे-छोटे इंद्रधनुषों से रंजित रहता है और यहाँ जीवन की हरियाली पर उषा मंगल-कुंकुम की वर्षा करती है। ये सभी प्रतीक क्रमशः भारत भूमि के नव-जागरण के विविध पक्षों पर प्रकाश डालते हैं। क्षितिज और अनंत की लहरें राष्ट्रीयता के बीच से विकसित होती हुई अंतर्राष्ट्रीयता की सूचना देती हैं, तो हरियाली नव-जीवन की और मंगल-कुंकुम बरसानेवाली उषा नव-जागरण की; और चिड़ियों के इंद्रधनुष विविध कल्पनाओं की ओर संकेत करते हैं। छायावाद के इस उदात्त और भावप्रवण देश-प्रेम के सम्मुख पूर्ववर्ती युग का देश-प्रेम बिना रंग-भरे चित्र का रेखाचित्र-मात्र है।

भावुक देश-प्रेम से भी आगे बढ़कर छायावादी कवियों ने देश की स्वतंत्रता के लिए उद्‌बोधन गीत लिखे। उसी *चन्द्रगुप्त* नाटक में देश के युवकों को ललकारते हुए प्रसाद गाते हैं:

हिमाद्रि तुंग शृंग से
प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतंत्रता पुकारती—
"अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य पंथ है—बढ़े चलो, बढ़े चलो!"

इस प्रकार छायावादी कवियों ने स्पष्ट रूप से राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए भी कविताएँ लिखीं।

लेकिन राजनीतिक स्वतंत्रता तो स्वतंत्रता का केवल एक अंग है। स्वतंत्रता बड़ी व्यापक भावना है जिसमें मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक, नैतिक, धार्मिक आदि सभी प्रकार की मुक्ति का भाव निहित है। समष्टि में स्वतंत्रता का अर्थ है मनुष्य के समूचे व्यक्तित्व के विकास के लिए पूर्ण सुविधाओं की प्राप्ति और व्यक्तित्व-रोधी समस्त बाधाओं की समाप्ति।

स्वतंत्रता के इस व्यापक अर्थ पर विचार करते ही तुरंत सवाल उठता है कि देश की स्वतंत्रता माने किसकी स्वतंत्रता? यदि अंग्रेज यहाँ से चले गए तो क्या संपूर्ण भारतवासियों को स्वतंत्रता मिल जाएगी? क्या समाज के निचले स्तर के लोग अर्थात किसान-मजदूर भी स्वतंत्र हो जाएँगे? अंग्रेजों के चले जाने से क्या गरीबों को भी सुविधाएँ मिल जाएँगी?

जिस देश में धर्मप्राण धनी-मानी लोग चींटियों के बिल पर चीनी भुरभुराते फिरते हों अथवा रामभक्त द्विज बंदरों को पुए खिलाते चलें वहाँ दीन मानव की क्या गति होगी—इसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है। अंग्रेजों के चले जाने के बाद शासन की बागडोर तो ऐसे ही लोगों अथवा इन्हीं के भाई-बंद के पास आती। इनसे गरीबों की भलाई होगी, इसकी क्या उम्मीद? जिनकी जीव-दया चींटियों और बंदरों तक ही सीमित है, उनकी करुणा मानव को कितनी मिल सकती है, इसे समझना कठिन नहीं है। *अनामिका* की 'दान' (1935) कविता में निराला ने ऐसे ही दयालु ढोंगियों का पर्दाफाश किया है। इस कविता में एक ऐसे राम-भक्त का चित्रण है, जो दुख पाने पर कपियों से हाथ जोड़कर प्रार्थना करते हैं; वर्ण के द्विज हैं, बारहो मास शिव को भजते हैं, रामायण का पारायण करते हैं और प्रतिदिन सरिता-मज्जन करते हैं। इन्हीं द्विजोत्तम ने एक दिन गोमती तट पर:

झोली से पुए निकाल लिए
बढ़ते कपियों के हाथ दिए;
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर;
चिल्लाया किया दूर मानव,
बोला मैं—"धन्य, श्रेष्ठ मानव!"

स्वाधीनता का अभिलाषी छायावादी कवि ऐसे ही मानव के भविष्य के लिए चिंतित था। वह जानना चाहता है कि इस गरीब ने आखिर क्या किया है, जो उसे यह पाप भोगना पड़ रहा है? वह इस सवाल का जवाब चाहता है, मगर जवाब इसका कौन दे?

ढोता जो वह, कौन-सा शाप?
भोगता कठिन, कौन-सा पाप?

यह प्रश्न सदा ही है पथ पर
पर सदा मौन इसका उत्तर!

इसके जवाब में अधिक से अधिक यही दिखाई पड़ता है कि उसकी गरीबी को जड़ से दूर करने की जगह धनी लोग दान देकर उसका मुँह बंद कर देते हैं! और वह दान भी कितना है? बस एक पैसा! इतनी बड़ी दया और ऐसा दान!

जो बड़ी दया का उदाहरण
वह पैसा एक, उपायकरण!

स्वाधीनता के इस बढ़ते हुए संघर्ष में निराला ने गरीबों का ध्यान बराबर रखा और उनका पक्ष लिया। *तुलसीदास* में भारत की दीन-दशा पर प्रकाश डालते हुए वे लिखते हैं:

रण के अश्वों से शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
शूद्रगण क्षुद्र जीवन-संबल, पुर-पुर में।
वे शेषश्वास, पशु, मूक भाष
पाते प्रहार अब हताश्वास;
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विज गण के।
होना ही उनका धर्म परम
वे वर्णाधम, रे द्विज उत्तम,
वे चरण, चरण बस, वर्णाश्रम रक्षण के।

स्वाधीनता की लड़ाई में इन चरणों की ओर ध्यान तो सन् तीस के बाद दिया जाने लगा, क्योंकि उसी के आसपास किसान-आंदोलन ने ज्यादा जोर पकड़ा। परंतु किसानों की दीन-दशा की ओर निराला का ध्यान बहुत पहले से ही रहा है। सन् '23 में ही *विप्लव के बादल* का आह्वान करते हुए निराला कहते हैं:

रुद्ध कोष है क्षुब्ध तोष
अंगना-अंग से लिपटे भी
आतंक अंक पर काँप रहे हैं
धनी, वज्रगर्जन से बादल।
त्रस्त-नयन-मुख ढाँप रहे हैं।
जीर्ण बाहु, है शीर्ण शरीर,
तुझे बुलाता कृषक अधीर,
ऐ विप्लव के वीर।

इस तरह छायावाद ने प्रत्यक्ष रूप से भी समकालीन राष्ट्रीय आंदोलन को प्रतिबिंबित और प्रभावित करने में महत्त्वपूर्ण कार्य किया। यह जरूर है कि सभी कवियों ने समान रूप से इस भाव की कविताएँ नहीं लिखीं, लेकिन यह सच है कि सभी कवियों ने राष्ट्रीय आंदोलन के किसी न किसी पहलू को यथाशक्ति चित्रित करने की कोशिश की। इन सबमें निराला सबसे आगे रहे। उन्होंने अधिक से अधिक व्यापक क्षेत्र तथा प्रगतिशील सामाजिक शक्ति को अपनाने की चेष्टा की। उन्हीं के प्रयत्न से छायावादी कविता 'बहुजीवन की छवि' कहलाने का गौरव प्राप्त कर सकी।